श्रीमद्भगवद्गीता के माहात्म्य का वाणी अथवा लेखनी द्वारा सम्यक् वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। सभी धार्मिक ग्रन्थों में जहाँ पर गीता के माहात्म्य का वर्णन है, हमारे सन्त-महात्माओं ने जो विचार व्यक्त किये हैं तथा इसके माहात्म्य के प्रति मानव मस्तिष्क में जिन भावनाओं की उत्पत्ति हो सकती है इस समग्र को लेकर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यही इसका माहात्म्य है। वस्तुतः गीता का माहात्म्य असीम और अपरिमित है। महाभारत के ही एक दृष्टान्त द्वारा इसके माहात्म्य की गूढ़ता एवं अपरिमितता सामने आ जाती है। युद्ध समाप्ति के उपरान्त एक दिन श्रीकृष्ण और अर्जुन मण्डप के अति रमणीय भाग में बैठकर प्रेम पूर्वक बातें कर रहे थे। अर्जुन ने कहा- **''केशव! युद्ध आरंभ के ठीक पूर्व जो आपने ज्ञान का उपदेश मुझे दिया था, उसे मैं भूल गया हूँ। आप शीघ्र ही द्वारका जाने वाले हैं, अतः वह सब मुझे कृपया पुनः सुना दीजिए''**। तब श्री कृष्ण ने कहा- **''धनंजय! अब मैं उस उपदेश को ज्यों-का-त्यों नहीं कह सकता, वह सारा-का-सारा उपदेश उसी रूप में फिर दुहरा देना अब मेरे वश की बात भी नहीं है। उस समय योगयुक्त होकर मैंने परमात्मतत्त्व का वर्णन किया था''**।[1] वस्तुतः श्रीभगवान् के लिए कुछ भी असंभव नहीं था, किन्तु इस विवरण से गीता के अपरिमित माहात्म्य का बोध अवश्य होता है।

इसी प्रकार जब नैमिषारण्य[2] स्थित महर्षि शौनक के गुरुकुल में लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवा सौति (सूत जी) का आगमन हुआ तब महर्षि ने उनसे गीता का माहात्म्य सुनाने का अनुरोध किया। सूत जी ने कहाः **''आपने जो पुरातन और उत्तम गीतामाहात्म्य पूछा है, वह अतिशय गुप्त है। अतः वह कहने के लिए कोई समर्थ नहीं है। गीता माहात्म्य को श्रीकृष्ण ही भली प्रकार जानते हैं, कुछ अर्जुन जानते हैं तथा व्यास, शुकदेव, याज्ञवल्क्य और जनक आदि थोड़ा-बहुत जानते हैं। दूसरे लोग कर्णोपकर्ण सुनकर लोक में वर्णन करते हैं।''**[1]

जब शास्त्रों के अध्ययन, संग्रह और मानव कल्याण के निमित्त उपयोगिता पर चर्चा हुई तथा महर्षि वैशम्पायन[2], जनमेजय[3] को श्रीमद्भगद्गीता सुनाने बैठे तो उन्होंने कहा- **''जनमेजय! अन्य बहुत से शास्त्रों का संग्रह करने की क्या आवश्यकता है? गीता का ही अच्छी तरह से गान अर्थात् श्रवण, कीर्तन, पठन-पाठन, मनन और धारणा करना चाहिए, क्योंकि वह स्वयं प-नाभ भगवान् के साक्षात् मुखकमल से निकली हुई है''**।[4] **''इस गीता में पांच सौ चौहत्तर श्लोक भगवान् श्रीकृष्ण ने कहे हैं, पचासी श्लोक अर्जुन के कहे हुए हैं, चालीस श्लोक संजय ने कहे हैं और एक श्लोक राजा धृतराष्ट्र का कहा हुआ है। यह गीता का मान बताया जाता है**।[5]

यहाँ गीता के मान का उल्लेख करने का उद्देश्य यह इंगित करने का है कि इसमें विषाद, जिज्ञासा और स्तुति रूप में अर्जुन द्वारा तथा राजा धृतराष्ट्र से विषय वस्तु का तारतम्य बैठाने के क्रम में संजय द्वारा कहे गए श्लोकों की संख्या बहुत कम है तथा श्रीभगवान् द्वारा कहे गए श्लोक ही बहुलता में अर्थात् चौरासी प्रतिशत हैं। परिदृश्य के अनुसार जो अंश श्रीभगवान् ने कहा है उसे **'श्रुति'** कहा जाता है और शेष जो अंश अर्जुन, संजय अथवा धृतराष्ट्र ने कहा है वह स्मृति, न्याय अथवा इतिहास के अन्तर्गत आता है जबकि प्रत्येक अध्याय के अन्त में जो पुष्पिका है उसके अनुसार श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्, ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र हैं, परन्तु परम्परा से तथा इसकी स्थिति महाभारत में होने के कारण गीता को स्मृति ग्रन्थ माना जाता है। वेदान्त दर्शन में भी श्रीमद्भगवद्गीता को स्मृति

प्रस्थान कहा गया है। यही सभी आचार्यों को मान्य है। श्रुतिज्ञान के अनुसार होने पर भी यह है स्मृति। वेद अपौरुषेय है और उपनिषद् श्रौत है। अतः गीता स्मार्त प्रस्थान के अन्तर्गत है।

इस ग्रंथ का पूरा नाम **'श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्'** है क्योंकि इसमें सभी उपनिषदों का सार आ गया है। इसीलिए जो **'पुष्पिका'** अर्थात् अध्याय-समाप्ति-सूचक संकल्प है, उसमें **''इति श्रीमद्भगवद्गीतासु-उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे......नाम......अध्यायः''** इत्यादि पद दिए गए होते हैं। बाद में इस ग्रंथ के महत्व, उपयोगिता तथा बहुआयामी प्रचार के कारण इसका नाम संक्षिप्त होता गया। **'श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्'** से **'श्रीमद्भगवद्गीता'** उससे **'भगवद्गीता'** और फिर केवल **'गीता'** ही संक्षिप्त नाम प्रचलित हो गया। इस नाम को सुनते ही हमारा ध्यान श्रीभगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को सुनाई गई **'भगवद्गीता'** की ओर ही जाता है।

किसे कहते हैं गीता?

गीता शब्द **'गै+क्त'** से मिलकर बना है जिसका अर्थ है 'गाया हुआ'। इस अर्थ से जो पद्य में हो और गाई गई हो, उसे गीता कह सकते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है, इस प्रकार तो समस्त पद्य काव्य साहित्य इसकी श्रेणी में आजाएगा।

अतः गुरु तथा शिष्य के मध्य श्लोक में कहे गए उपदेशात्मक ज्ञान अथवा पद्य में लिखे गए धार्मिक ग्रन्थ जो आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं और जिन्हें गाकर सुनाया गया हो या सुनाया जा सकता हो **'गीता'** कहलाते हैं।

गीता एक या अनेक :

वस्तुतः श्रीभगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को सुनाई गई **'भगवद्गीता'** को ही **'गीता'** नहीं कह सकते। अनेक ज्ञान विषयक ग्रंथ किसी विशिष्ट वक्ता, श्रोता या प्रतिपाद्य विषय के साथ **'गीता'** शब्द जोड़कर **'गीता'** नाम से प्रचलन में हैं। **'गीता'** जातिवाचक शब्द है जिसमें उपदेशक, श्रोता अथवा विषय वस्तु का नाम जोड़ने से वह व्यक्तिवाचक हो जाता है। केवल महाभारत में **'श्रीमद्भगवद्गीता'** को छोड़कर दस और गीताओं का उल्लेख है जिनमें से आठ शान्ति पर्व में तथा दो आश्वमेधिक पर्व में हैं। शान्ति पर्व में **मंकि गीता, सम्पाक गीता, बोध्य गीता, विचख्नु गीता, हारीत गीता, वृत्र गीता, पराशर गीता** तथा **हंस गीता** का वर्णन है[1]। आश्वमेधिक पर्व में **अनुगीता** तथा **ब्राह्मण गीता** है[2]। इनके अतिरिक्त महाभारत में अनेक ऐसे आख्यान हैं जिन्हें आध्यात्मिक सिद्धान्तों से युक्त उपदेशात्मक तथा गाये जाने वाले श्लोक के रूप में होने के कारण **'गीता'** कहा जा सकता है, किन्तु मूल महाभारत में इन आख्यानों के साथ **'गीता'** शब्द प्रयोग नहीं किया गया है। वस्तुतः श्रीमद्भगवद्गीता को छोड़कर उपरोक्त दस में **'गीता'** शब्द का मूलतः प्रयोग किया गया है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण में तीन उपदेशात्मक आख्यान ऐसे हैं जिनके साथ **'गीता'** शब्द यद्यपि जुड़ा हुआ नहीं है किन्तु इन्हें उपदेशकर्ता के नाम के साथ **'गीता'** शब्द जोड़कर व्यक्त किया जाता है। ये हैं **'कपिल गीता', 'हंस गीता'** तथा **'भिक्षु गीता'**।[1]

अध्यात्म रामायण में **'रामगीता'**[2] है। एक बहुचर्चित **''अष्टावक्र गीता''** है जिसमें महर्षि अष्टावक्र ने राजा जनक को गूढ़ ज्ञान का उपदेश किया है। इनके अतिरिक्त **गणेश गीता, ईश्वर गीता, व्यास गीता, ब्रह्म गीता, यम गीता, शिव गीता, देवी गीता, अवधूत गीता** आदि नाम से अनेक गीताएँ विभिन्न अध्यात्मिक ग्रन्थों में अथवा स्वतंत्र रूप से उपलब्ध हैं। श्री लोकमान्य तिलक जी ने गीता रहस्य में इन गीताओं का उल्लेख किया है। इधर हाल में श्रीरामचरितमानस के विभिन्न उपदेशात्मक प्रसंगों को भी अलग-अलग गीता नाम से संयुक्त कर उन्हें भी **''गीता''** नाम दे दिया गया है।

अनेक गीताएं उपलब्ध होने के उपरान्त भी **'श्रीमद्भगवद्गीता'** जो श्रीभगवान् कृष्ण ने अर्जुन को सुनाई और जिसका समावेश महाभारत के भीष्म-पर्व में पच्चीसवें से बयालिसवें अध्याय तक है **'गीता'** नाम से जगत प्रसिद्ध है। अनेक प्रकार की गीताओं के कारण **'श्रीमद्भगवद्गीता'** की तेजस्विता कहीं और प्रखर हो गई। मात्र **'गीता'** नाम से उच्चरित और लोकप्रिय इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता अनेक गीताओं के होने पर भी निर्विवाद रूप से सिद्ध है। **'गीता'** में अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ होने के लिए कर्मयोग तथा ज्ञानयोग के दो मार्ग बताकर पुनः कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग तथा ज्ञानयोग में समन्वय करने की जो अपूर्व शैली है वह कहीं भी किसी ग्रन्थ में एक स्थान पर दृष्टिगोचर नहीं होती। कारण यह कि श्रीभगवान् की स्वयं की वाणी जो है[1]। श्रेष्ठ ऋषियों-महर्षियों को ध्यानकाल में प्राप्त अनुभूति तथा उनकी वाणी, श्रेष्ठ होते हुए भी श्रीभगवान् द्वारा निःसृत वाणी **'गीता'** से समता कदापि नहीं कर सकती। भगवान् सभी ऋषि-महर्षियों के भी आदि कारण हैं[2]। अतः समता का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रस्थानत्रयी में गीता का स्थान :

उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र तीन प्रमुख ग्रन्थ हैं, जिन्हें **'प्रस्थानत्रयी'** कहा जाता है। शब्दार्थ से भी इसका महत्व समझा जा सकता है। एक शब्द है **'पद्धति'** जिसका अर्थ पगडंडी तथा पथ भी होता है, दूसरा शब्द है **'प्रस्थान'** जिसका अर्थ राजमार्ग, मार्ग, चौड़ी सड़क, शिखर या चोटी भी होता है। **'प्रस्थानत्रय'** में आने वाले ग्रन्थों को छोड़कर शेष सभी **'पद्धतियाँ'** हैं। **'प्रस्थानत्रयी'** में भी गीता उत्कृष्ट है क्योंकि इसमें सभी उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्र का सारतत्व आ जाता है। वेदान्त दर्शन में गीता को स्मृति-प्रस्थान, उपनिषदों को श्रुति-प्रस्थान तथा बादरायण के ब्रह्मसूत्र को न्याय-प्रस्थान कहा जाता है।[3] दर्शन शास्त्रों में जीव-जगत-ब्रह्म आदि की व्याख्या की जाती है, किन्तु गीता इनकी व्याख्या के साथ-साथ ब्रह्म का अनुभव भी कराती है। अतएव सभी दर्शन शास्त्र गीता की परिधि के अन्तर्गत माने जाते हैं परन्तु गीता किसी दर्शन के अन्तर्गत नहीं है। वेदों का सार वेदान्त या उपनिषद् हैं तथा उपनिषदों का सार **'गीता'** है।[4]

आचार्यों ने अपने-अपने मत के अनुसार **'प्रस्थानत्रयी'** के इन तीनों दर्शन ग्रन्थों पर भाष्य तथा टीकाएं[1] लिखी हैं। उनमें भी उन्होंने **'गीता'** पर विशेष ध्यान दिया। वेदान्त के आचार्यों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने विशेष मत तथा सिद्धान्तों को इन ग्रन्थों के आधार पर उचित ठहराएँ और यह प्रतिपादित करें कि ये मूलग्रंथ उनके ही सिद्धान्त तथा दृष्टिकोण की शिक्षा देते हैं। यहाँ **'गीता'** का विषय विचारणीय है। यद्यपि **'प्रस्थानत्रयी'** के तीनों दर्शन गन्थों के साथ आचार्यों के मतभेद तथा मतान्तर हैं तथापि **'गीता'** के प्रसंग में विशिष्टता से परिलक्षित होता है कि गीता की विभिन्न

टीकाएँ आचार्यों द्वारा अपने मत तथा सम्प्रदाय के समर्थन तथा दूसरों के मत तथा सम्प्रदायों के खण्डन हेतु लिखी गईं। यह **'गीता'** की अथाह गूढ़ता, रहस्यात्मकता तथा महत्ता का ही परिचायक है कि जो जिस प्रकार का मोती चाहे उसमें से निकाल ले। गीता में भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों का एकीकरण ऐसे अनोखे ढंग से किया गया है कि सभी पद्धतियाँ एक ही राजमार्ग को गन्तव्य के रूप में प्रवृत्त करती हैं तथा इसमें उत्कृष्ट आदर्श के लक्ष्य का केन्द्र बिन्दु रखते हुए भी प्रत्येक साधक को उसकी पात्रता और मनोवृत्ति के अनुरूप साधन हेतु निर्देश मिल जाता है। वस्तुतः गीता कल्पवृक्ष होकर साधक को फल देती है।

गीता में अद्वैत दर्शन :

उपलब्ध भाष्य तथा टीकाओं में आदिशंकराचार्यकृत शांकरभाष्य सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। इसके पूर्व की कोई टीका अथवा भाष्य उपलब्ध नहीं है, यद्यपि आदिशंकराचार्य अपने भाष्य में, पूर्व में लिखी गई टीकाओं के मतों का उल्लेख अवश्य करते हैं। शंकराचार्य के अनुसार पूर्वकालीन टीकाकार, गीता का अर्थ तथा अभिप्राय महाभारत-कर्ता के अनुसार ही ज्ञान कर्म समुच्चयात्मक किया करते थे अर्थात् उसका यह प्रवृत्ति-विषयक अर्थ लगाया जाता था कि ज्ञानी मनुष्य को ज्ञान के साथ-साथ मृत्युपर्यन्त स्वधर्म विहित कर्म करते रहना चाहिए।[1] न तो अकेला ज्ञान और न अकेला कर्म आध्यात्मिक मुक्ति तक ले जा सकता है, बल्कि इन दोनों के सम्मिलित अभ्यास से ही हम लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं।

बौद्ध धर्म के ह्रास के पश्चात जो अनेक मत भारतवर्ष में प्रचलन में आये और जिन्होंने अपने-अपने मत की विशिष्टिताओं के साथ गीता पर भाष्य तथा टीकाएं लिखीं उनमें से प्रमुख **अद्वैत** अर्थात् **द्वैत का न होना, विशिष्टाद्वैत** अर्थात् **सोपाधिक अद्वैत, द्वैत** अर्थात् **दो की सत्ता स्वीकार करना, शुद्धाद्वैत** अर्थात् **विशुद्ध अद्वैत** तथा **द्वैताद्वैत** आदि हैं।

अद्वैत मत[2] की प्रतिष्ठा आदिशंकराचार्य ने जैन और बौद्ध मतों का खंडन करके की थी। गीता के परिप्रेक्ष्य में आदिशंकराचार्य **"ज्ञान कर्म समुच्चय"** के दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि सर्व-कर्म-सन्यास पूर्वक ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है और कर्म, ज्ञान-प्राप्ति का गौण साधन है। आगे कहते हैं **"गीता शास्त्र में निश्चित अर्थ यही है कि केवल तत्वज्ञान से ही मुक्ति होती है, कर्म सहित ज्ञान से नहीं"**[3]। ज्ञान और कर्म एक-दूसरे के ठीक वैसे ही विरोधी हैं जैसे दिन-रात्रि या प्रकाश और अंधकार। कर्म चित्त को शुद्ध करने वाला अत्यन्त आवश्यक साधन है। वे स्वयं भी कर्म करते रहे तथा शंकराचार्य अथवा उनके समर्थकों ने कर्म की निन्दा नहीं की। वे चित्त-शुद्धि के लिए प्रवृत्ति-मार्ग अर्थात् कर्म को आवश्यक मानते हैं। इसी लिए वे सभी को सन्यास का अधिकारी नहीं मानते। किन्तु यह अवश्य कहा कि ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उच्चावस्था में कर्मो के लौकिक स्वरूप छूट जाते हैं। आदिशंकराचार्य ने अपने विचार के समर्थन में गीता से ही प्रमाण स्वरूप उद्धरण भी दिए हैं यथा- **"सब प्रकार के समस्त कर्मो का पर्यवसान ज्ञान में होता है"**[1] तथा **"जिस प्रकार प्रज्वलित की हुई अग्नि सम्पूर्ण ईंधन को भस्म कर डालती है, उसी प्रकार ज्ञान रूप अग्नि सब**

कर्मों को जला डालती है"[2]। उनका यह भी कथन है कि मुक्ति प्राप्ति की अभिलाषा करने वालों को कर्मकाण्ड का परित्याग कर देना चाहिए तथा **"श्रौतादि सम्पूर्ण कर्म केवल उन लोगों के लिए हैं जो अविद्या (अज्ञान) और कामना से ग्रसित हैं"**[3]।

श्रीशंकराचार्य के अनुसार **"संक्षेप में इस गीता शास्त्र का प्रयोजन परमकल्याण अर्थात् कारणसहित (नाम-रूपमय) संसार की अत्यन्त उपरति (पूर्ण विलोप) है, यह (परमकल्याण) सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक आत्मज्ञान निष्ठारूप धर्म से प्राप्त होता है"**।[4] वस्तुतः गीता के प्रवृत्ति विषयक स्वरूप के स्थान पर उसके निवृत्ति स्वरूप को शांकरभाष्य के माध्यम से शंकराचार्य ने व्यक्त किया। उनका कथन है कि- गृहस्थ के लिए गृहस्थाश्रम में कर्म करने की अनिवार्यता होती है किन्तु कर्मों को जीवन पर्यन्त सदैव नहीं करते रहना चाहिए क्योंकि कर्मों का त्याग करके अन्त में संन्यास के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती। इसीलिए इस मार्ग को **'निवृत्ति मार्ग'** या **'संन्यास निष्ठा'** तथा संन्यासी के ज्ञान में निमग्न होने के कारण **'ज्ञान निष्ठा'** भी कहते हैं। शंकराचार्य के पश्चात् उनके मत का प्रतिपादन आनन्दगिरी, श्रीधर, मधुसूदन सरस्वती तथा सन्त ज्ञानेश्वर आदि ने किया तथा जो टीकाएँ लिखीं उनमे मुख्यतः शंकराचार्य का ही अनुकरण किया। यद्यपि सन्त ज्ञानेश्वर की टीका में तत्वज्ञान के साथ भक्ति का भी समावेश है।

गीता में विशिष्टाद्वैत दर्शन :

रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य के लगभग दो सौ पचास वर्षों पश्चात् अपनी टीका में संसार की अवास्तविकता और कर्म त्याग के मार्ग के सिद्धान्त का खण्डन किया और मायावाद, अद्वैत और संन्यास का प्रतिपादन करने वाले अद्वैत संप्रदाय के स्थान पर **'विशिष्टाद्वैत' संप्रदाय**[1] चलाया। श्रीमद्भगवद्गीता के परिप्रेक्ष्य में रामानुजाचार्य का मत है कि गीता में यद्यपि ज्ञान, भक्ति और कर्म इन तीनों का वर्णन है तथापि मुख्य बल भक्ति पर है। उनका यह भी कथन है कि ज्ञान के लिए कर्मनिष्ठा आवश्यक है तथा तत्व ज्ञान की दृष्टि से विशिष्टाद्वैत और व्यवहार के लिए भगवद्भक्ति ही गीता का सन्देश है। रामानुजाचार्य ने भक्ति को ही अंतिम तथा आवश्यक कर्तव्य मानते हुए **"अद्वैत"** के स्थान पर **"विशिष्टाद्वैत"** तथा **"संन्यास"** के स्थान पर **"भक्ति"** को प्रतिपादित किया। अपने मन और आत्मा द्वारा परमात्मा की सेवा और भक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है तथा इसके लिए दैवी कृपा भी आवश्यक है। मुक्ति परमात्मा की सेवा और साहचर्य का नाम है।

गीता में द्वैत दर्शन :

आगे चलकर माया को मिथ्या मानने को गलत ठहराते हुए तथा आत्मा को एक अर्थ में परमात्मा के साथ तद्रूप मानने और दूसरे अर्थ में परमात्मा से भिन्न मानने को परस्पर विरोधी बात की संज्ञा देते हुए श्रीमत्आनन्दतीर्थ (श्रीमध्वाचार्य) ने **'द्वैतवाद'**[1] प्रस्तुत किया। उनका कथन है कि परमात्मा और जीव शाश्वत रूप से एक दूसरे से पृथक हैं। मध्वाचार्य ने भगवद्गीता पर दो ग्रन्थ लिखे हैं- **"माध्वभाष्य"** तथा **"गीता तात्पर्य"**। उन्होंने भगवद्गीता सहित प्रस्थानत्रयी के सभी ग्रन्थों को द्वैतमत का प्रतिपादक ही कहा तथा गीता से द्वैत का सिद्धान्त प्रकट करते हुए व्यक्त किया कि- **"गीता का निष्काम कर्म महत्वपूर्ण होते हुए भी मात्र साधन है, भक्ति ही अंतिम निष्ठा है"**। उनका

मत है कि **"गीता में भक्ति पर ही बल दिया गया है तथा भक्ति निष्ठा हो जाने के उपरान्त कर्म करना या न करना एक ही है"।**

गीता में द्वैताद्वैत दर्शन :

निम्बकाचार्य ने जो मध्वाचार्य के पहले तथा रामानुजाचार्य के बाद हुए थे आत्मा (जीव), संसार तथा परमात्मा को एक दूसरे से भिन्न मानते हुए आत्मा और संसार का अस्तित्व तथा गतिविधि परमात्मा की इच्छा पर निर्भर मानते हुए और राधा माधव के भाव का समावेश करते हुए **"द्वैताद्वैत (भेदाभेद)"** वाद[1] चलाया। इनके शिष्य केशव कश्मीरी ने श्रीमद्भगवद्गीता पर **'तत्त्व प्रकाशिका'** नामक टीका लिखते हुए यह व्यक्त किया है कि गीता का तात्पर्य इसी **"द्वैताद्वैत सम्प्रदाय"** के अनुकूल है।

गीता में शुद्धाद्वैत दर्शन :

वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के अद्वैत को नितान्त अशुद्ध बताकर एक मत विकसित किया जिसे **"शुद्धाद्वैत"**[2] कहा जाता है। इस मत के अनुसार माया-रहित शुद्ध जीव और परब्रह्म एक ही हैं। मायाधीन जीव को ईश्वर की कृपा के बिना मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती, अतः मुक्ति का मुख्य साधन भगवान् की **'भक्ति'** है, जो भगवान् के **'अनुग्रह'** अर्थात **'पुष्टि'** से प्राप्त होती है। भगवान् की **'पुष्टि'** से ही मुक्ति प्राप्त होने के कारण इस मार्ग को **'पुष्टि मार्ग'** भी कहा जाता है। भगवद्गीता पर बल्लभ संप्रदाय का **'तत्त्वदीपिका'** नामक ग्रन्थ है। गीता के सम्बन्ध में इनका कथन है **"निवृत्ति-विषयक पुष्टिमार्गीय भक्ति ही गीता का मुख्य तात्पर्य है क्योंकि भगवान् अर्जुन को पहले सांख्ययोग उसके श्चात् कर्मयोग और अंत में भक्तियोग का उपदेश देकर शरणागति की बात करते हैं"।**

गीता में अचिन्त्य भेदाभेद दर्शन :

चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा के धनी तथा महान भक्त हुए हैं। वे **'अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त'** के पोषक थे तथा उनके विचार से परमात्मा भेद-अभेद के विचार से परे है। उनका कथन है कि- **"जो कोई भी गीता को मायावादी मत के अनुसार समझने का प्रयत्न करेगा, वह महान अपराध कर बैठेगा"।** चैतन्य महाप्रभु ने समस्त मानव के लिए स्वधर्म पालन करते हुए परमात्मा श्रीकृष्ण को स्मरण करने तथा उनके नाम का कीर्तन करने का संदेश दिया।

अनेकता में एकता :

यदि इन सभी सिद्धान्तों, सम्प्रदायों तथा वादों पर गीता के परिप्रेक्ष्य में गहराई से विचार किया जाय तो यह बात सामने आती है कि इनमें दूरगामी विरोध नहीं है। यद्यपि आदि शंकराचार्य के अद्वैतवाद एवं मायावाद से असहमति के कारण ही विभिन्न वाद एक के बाद एक प्रतिपादित किए गये जिनमें भक्ति का ही नियामक होना मुख्य था, तथापि देश के अनेक संत-महात्माओं ने भक्ति के साथ ही साथ अद्वैत और मायावाद का भी उपयोग किया। उदाहरण के लिए हम संत ज्ञानेश्वर की गीता टीका को ले सकते हैं जिसमें भक्ति और तत्त्वज्ञान दोनों हैं। ऐसे ही अनेक अन्य उदाहरण भी हैं। उसी प्रकार अद्वैत और मायावाद के सिद्धान्त पर चलने वालों ने भी भक्ति को नहीं छोड़ा। शंकराचार्य ने स्वयं अनेक भक्ति स्तोत्रों की रचना की है, यथा- शिव, दुर्गा आदि की भक्ति में लिखे गए उनके

स्तोत्र। उनके द्वारा लिखे गए स्तोत्र ग्रन्थों की कुल संख्या 73 है जो उनके अन्य ग्रन्थों की संख्या से कहीं अधिक है। कर्म के सम्बन्ध में सभी वादों तथा सम्प्रदायों का लगभग एक ही मत है कि गीता का प्रवृत्ति विषयक कर्म मार्ग केवल चित्त शुद्धि तथा ज्ञान का साधन है। सामान्यतया व्याख्याओं में अन्तर व्याख्याकार द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के कारण दिखता है। भारतीय परम्परा यह मानती है कि भिन्न-भिन्न दिखने वाले दृष्टिकोण एक दूसरे के पूरक हैं।

गीता के एक ही कृष्ण निर्गुण, सगुण, निरुपाधिक और सोपाधिक सभी कुछ हैं। इसीलिए विद्वज्जन सभी आचार्यों के सिद्धान्तों को मिलाजुलाकर गीता तत्त्व की चर्चा करते हैं। वे वादों के विवाद में न पड़कर सभी का आनन्द लेते हैं। ये सभी वाद भिन्न-भिन्न होते हुए भी परमार्थ की दृष्टि-गीता की दृष्टि से अभिन्न हैं। गोस्वामी जी भगवान् श्रीराम की स्तुति करते हुए कहते हैं- **"जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और लहर के समान कहने में अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं"।**[1] यही स्थिति गीता के तात्पर्य के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों (वादों) की है। वस्तुतः श्रीकृष्ण जिस स्तर पर थे उस अवस्था को प्राप्तः महापुरुष ही जानता है कि गीता का गूढ़ार्थ क्या है तथा श्रीकृष्ण के चरित्र को अपनी दृष्टि के सामने रखकर ही गीता का अर्थ करना चाहिए। यह गीता का उत्कृष्ट माहात्म्य ही है कि उसमें एक ही अर्थ सुबोध रीति से प्रतिपादित होने के उपरान्त भी सभी संप्रदायों के प्रवर्तकों तथा अनुयायियों ने जो टीकाएं लिखीं उनमें यही दर्शित किया कि गीता मुख्य रूप से उनके ही विशिष्ट दृष्टिकोण की शिक्षा देती है। यह गीता का महान गौरव है कि सभी सिद्धान्त तथा वाद अपना मूल गीता सहित प्रस्थानत्रयी को मानते हैं। इन सिद्धान्त-वादी आचार्यों तथा इनके अनुयायियों के पश्चात अनेक महान विभूतियों ने अपने-अपने ढंग से गीता पर अपने विचार तथा अनुभव व्यक्त किए अथवा टीकाएँ लिखीं। इनमें तिलक जी, महात्मा गांधी, विनोबा जी, महर्षि अरविन्द, डा. राधाकृष्णन, स्वामी शिवानन्द, राम सुखदास जी, गोयन्दका जी, स्वामी चिन्मयानन्द जी, स्वामी अखण्डानन्द जी आदि मुख्य हैं।

सरलता और गहनता :

गीता के श्लोक इतने सरल हैं कि प्रत्येक मनुष्य इनका अर्थ थोड़ा प्रयास करके समझ सकता है किन्तु भाव इतना गूढ़ होता है कि विरले ही मनुष्य इसे समझ पाने की बात कह सकते हैं। इसीलिए गीता के श्लोक तथा उनके भाव गुरुमुख से सुनने की बात कही जाती है। जितना ही मनन-चिन्तन किया जाता है नये भाव उत्पन्न होते हैं तथा श्लोकों की गहराई परिलक्षित होने लगती है।

भगवद्गीता ईश्वर और मनुष्य का अर्थात् नर और नारायण का संवाद है क्योंकि श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं और अर्जुन नर हैं। श्रीस्कन्दपुराण में वर्णन है कि- **"मुनिवर व्यास ने अठारह पुराणों और नौ व्याकरणों का मन्थन करके महाभारत की रचना की और महाभारत रूपी समुद्र का मन्थन करके और सार निकाल कर भगवद्गीता को प्रस्तुत किया** (गीतासार गीता माहा.-5)"। गीता महाभारत का अंश होने के कारण महाभारत की भांति धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र का ग्रंथ है तथा इसमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन है। अतः इसे सर्वशास्त्रमयी कहा जाता है। श्रीशंकराचार्य ने गीताशास्त्र को-**"सम्पूर्ण वेदों का सार-संग्रह रूप तथा इसको जान लेने पर समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि देने वाला"**[1] कहा है।

गीता भगवान् की वाङ्मयी मूर्ति है। गीता के प्रथम पाँच अध्याय भगवान् के पाँच मुख, तत्पश्चात् दस अध्याय दस भुजाएं, सोलहवाँ अध्याय उदर तथा सत्रहवाँ और अठारहवाँ अध्याय पैर हैं।[2]

शक्ति के उपासक गीता के इन श्लोकों को बीज, शक्ति और कीलक के रूप में मानते हैं।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।

इति बीजम्। (गीता 2/11)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

इति शक्तिः -गीता 18/66 (1)

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

इति कीलकम् -गीता 18/66 (2)

ममत्व :

मनुष्य जीवन की कोई भी ऐसी समस्या नहीं है जिसका समुचित, सार्थक समाधान गीता में न हो। यदि आप अपने को अज्ञानी दुःखी, मरणधर्मी समझते हैं तथा चारों ओर से विरोध और संघर्ष से घिरा हुआ पाते हैं और इनसे छूटना चाहते हैं तो गीता की शरण में आइए। गीता का प्रकाश गुरु और मित्र की भांति आपको मार्ग दिखलाएगा, मन की ग्रन्थियों का समाधान करेगा और आप इन सभी समस्याओं से मुक्त हो जाएंगे। दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं अखण्ड आनन्द की प्राप्ति, लोक में कर्म करते हुए भी पूर्णतया सम्भव है। गीता इस तथ्य की स्पष्ट व्याख्या करती है। गांधी जी अपनी आत्मकथा में गीता के सम्बन्ध में लिखते हैं- **"मुझे जन्म देने वाली माता तो चली गई, पर संकट के समय गीता माता के पास जाना मैं सीख गया हूँ। निराशा के समय इस ग्रन्थ ने मेरी अमूल्य सहायता की है। जो मनुष्य गीता का भक्त होता है, उसके लिए निराशा की कोई जगह नहीं है।"**[1] विनोबा भावे अपने गीता-प्रवचन में व्यक्त करते हैं- **"मेरा शरीर माँ के दूध पर जितना पला है, उससे कहीं अधिक मेरा हृदय और बुद्धि, दोनों गीता के दूध से पोषित हुए हैं। गीता का और मेरा संबंध तर्क से परे है। जहाँ हार्दिक संबंध होता है, वहाँ तर्क की गुंजाइश नहीं रहती। तर्क को काट कर श्रद्धा और प्रयोग, इन दो पंखों से ही मैं गीता-गगन में यथा शक्ति उड़ान भरता हूँ। मैं प्रायः गीता के ही वातावरण में रहता हूँ। गीता मेरा प्राण-तत्त्व है। जब मैं गीता के संबंध में किसी से बात करता हूँ तब गीता-सागर पर तैरता हूँ और जब अकेला रहता हूँ तब उस अमृत-सागर में गहरी डुबकी लगाकर बैठ जाता हूँ।"**[2]

गीता मात्र दार्शनिक विवेचन अथवा तत्त्व ज्ञान नहीं है, बल्कि व्यावहारिक दर्शन भी है तथा मनुष्य के सर्वतोमुखी कल्याण के निमित्त व्यावहारिक रूप भी प्रस्तुत करती है। यदि आधारभूत ढंग से विचार करें तो इसकी व्यावहारिकता और अधिक समझ में आती है। सामान्यतः उपदेश तथा उसका

श्रवण और ज्ञान-विज्ञान की चर्चा अरण्य, गंगातट अथवा देवस्थान के शान्त स्थल में किया जाता है किन्तु गीतोपदेश कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अर्थात् जीवन संघर्ष में हो रहा है, जो ज्ञान जीवन संघर्ष में भी काम आए वही उत्तम ज्ञान है। सदैव उपदेशकर्ता-वक्ता, श्रोता से श्रेष्ठ होता है। वक्ता का आसन ऊँचा होता है तथा श्रोता नीचे अथवा जमीन पर बैठता है किन्तु गीतापदेश के समय श्रोता जो रथ का स्वामी भी है ऊपर बैठा है और वक्ता-उपदेशकर्ता सारथी नीचे बैठा है या खड़ा है। यहाँ बुद्धि (सारथी) जीवात्मा (रथी) को उपदेश कर रहा है। वास्तव में यह दो परम मित्रों का परस्पर संवाद है। यहाँ महत्व उपदेशकर्ता और श्रोता की स्थिति का नहीं है, बल्कि संवाद की व्यावहारिकता का है। प्रायः सन्यासी, ब्रह्मचारी को उपदेश देता है, दोनों ही त्यागी होते हैं किन्तु यहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही गृहस्थ हैं। वक्ता भी गृहस्थ तथा श्रोता भी गृहस्थ। यज्ञ का फल स्वर्ग में जाने पर मिलता है तथा इस लोक में फल के लिए किए जाने वाले नैमित्तिक यज्ञ का फल इस लोक में मिल जाता है किन्तु गीता ज्ञान का फल दृश्य फल है अर्थात् तत्क्षण मिलता है।

<u>पूर्णप्रश्न-पूर्णउत्तर :</u>

गीता में अर्जुन समग्र मानव की जिज्ञासा के समाधान हेतु प्रतिनिधि के रूप में हैं। अर्जुन द्वारा पूछे गये प्रश्नों तथा जिज्ञासाओं को एक जगह संकलित कर उनका अनुशीलन करने पर अतीव बौद्धिक क्रमबद्धता का दिग्दर्शन होता है। अर्जुन के प्रश्नों तथा जिज्ञासाओं के क्रम के साथ उनकी गूढ़ता बढ़ती जाती है। मानवीय समस्याएं दैनिक जीवन के व्यवहार की, कौटुम्बिक आसक्ति, अध्यात्म, तत्त्व ज्ञान, शान्ति प्राप्त करने की तथा मुक्ति की हो सकती हैं। श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं तथा सभी समस्याओं का सम्यक एवं पूर्ण समाधान करते हैं। क्या करें, क्या न करें, कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है इनका द्वन्द्व बहुत पीड़ा पहुँचाता है और कभी-कभी मनुष्य को विक्षिप्तता तथा अवसाद की स्थिति में पहुँचा देता है। सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर द्वारा लिखित एक नाटक **"हैमलेट"** बहुत प्रसिद्ध है। हैमलेट स्वयं नाटक का मुख्य पात्र है तथा डेनमार्क का राजकुमार है। हैमलेट की त्रासदी यह है कि उसका चाचा हैमलेट के पिता (राजा) को मार कर स्वयं राजा बन गया तथा हैमलेट की माँ को अपनी पत्नी बना लिया। हैमलेट को यह नहीं सूझ रहा था कि उसके लिए कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है? वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह अपने पापी चाचा का वध कर पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए पुत्र धर्म का पालन करे अथवा राजा के रूप में बैठे हुए अपनी माता के पति और सगे चाचा पर दया कर अपनी माता को विधवा होने से बचाले। अंत में वह श्रीकृष्ण जैसे पथ-प्रदर्शक, सदुपदेशक के अभाव में अवसाद ग्रसित होकर विक्षिप्त हो गया। गीता में अर्जुन मानव जीवन के **"पूर्णप्रश्न"** तथा श्रीकृष्ण **"पूर्णउत्तर"** हैं।

<u>सर्वजन हिताय :</u>

गीता के उपदेश केवल हिन्दू धर्म, किसी विशिष्ट व्यक्ति, जाति, वर्ग, पन्थ, देश-काल, रूढ़ि ग्रस्त सम्प्रदाय अथवा भारतीयों के लिए नहीं हैं अपितु समस्त मानव जाति के लिए हैं और उस मानव धर्म का आध्यात्मिक विवरण प्रस्तुत करते हैं जो वास्तव में धर्म है तथा देश और काल की सीमाओं से मुक्त है। गीता अलौकिक महान् ग्रन्थ है जो प्रत्येक साधक के लिए, वह किसी भी देश, वेश, सम्प्रदाय,

समुदाय, आश्रम अथवा वर्ण का क्यों न हो, सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान करता है। इसमें तत्त्व ज्ञान का वर्णन है जो किसी बन्धन अथवा सीमा की परिधि में नहीं है। गीतोपदेश ने विश्व के अनेक देशों के दार्शनिकों तथा विचारकों को मुग्ध किया, जिन्होंने इसका विधिवत अध्ययन किया, इसे स्वयं के जीवन में अपनाया तथा इसका प्रचार-प्रसार भी किया। महान दार्शनिक डा0 सर्वेपल्लि राधाकृष्णन ने भगवद्गीता पर अपनी शोधपरक टीका, जिसका नाम भी उन्होंने **'भगवद्गीता'** ही रखा है, तथा गीता मर्मज्ञ श्री शिवानन्द ने **'गीता-रसामृत'** नाम से लिखी गई अपनी टीका में अन्य धर्म तथा देशों के विचारकों-विद्वानों-दार्शनिकों पर गीता के प्रभाव तथा उनके योगदान का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। डा0 राधाकृष्णन ने उल्लेख किया है कि गीता का प्रभाव प्रारम्भिक काल में चीन और जापान तक फैला हुआ था और बाद में पश्चिम के देशों में भी फैल गया। बौद्ध धर्म की महायान शाखा के दो ग्रन्थों **'महायान श्रद्धोत्पत्ति' (महायान में श्रद्धा का जागरण)** और **'सद्धर्मपुण्डरीक' (सच्चे धर्म का कमल)** पर गीता की शिक्षाओं का गहरा प्रभाव है। श्री शिवानन्द जी ने बुखारा के राजकुमार अलबेरुनी के संस्कृत सीखकर अपनी पुस्तक में गीता की प्रशंसा करने, शेख अबुल रहमान चिश्ती द्वारा गीता का फारसी में अनुवाद करने, सम्राट अकबर द्वारा अपने समय के विद्वान अबुल फैजी द्वारा गीता का अनुवाद फारसी में कराने तथा शाहजहाँ के पुत्र दारा शिकोह द्वारा गीता की प्रशंसा में लिखते हुए प्लेटो के गुरु सुकरात पर भी गीता के बहुत प्रभाव का उल्लेख किया है। इन्होंने अंग्रेजों के शासनकाल में चार्ल्स विल्किन्स द्वारा संस्कृत का अध्ययन कर गीता का अंग्रेजी में अनुवाद, फ्रेंच विद्वान् दुपरों द्वारा फ्रेंच में गीता का अनुवाद तथा जर्मनी के महाकवि आगस्ट विल्हेम श्लेगल द्वारा 1823 में गीता का जर्मन तथा लैटिन में अनुवाद करने, जर्मन विद्वान् हम्बोल्ट द्वारा गीता पढ़कर अपने जीवन को सार्थक मानने तथा गीता की प्रशंसा में उनके वाक्यों, प्रख्यात अमेरिकी सन्त लेखक थारो, जो गीता के महान उपासक थे तथा थारो के भक्त अमेरिकी लेखक शल्फ वाल्डो एमरसन द्वारा गीता के सम्बन्ध में व्यक्त अनुभव, टी0 एस0 इलियट, एल्डुअस हक्सले तथा यीट्स आदि द्वारा कही गई बातों का उल्लेख भी किया है।

डा0 राधाकृष्णन् ने अपनी टीका में जर्मन में गीता को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान देने का भी उल्लेख किया है। जर्मन धर्म के अधिकृत भाष्यकार जे0 डब्ल्यू0 होअर ने जो संस्कृत के भी विद्वान थे, भारत में कई वर्षों तक धर्म प्रचार का कार्य किया तथा गीता को **'एक अनश्वर महत्त्व का ग्रन्थ'** बतलाते हुए अपना भाव विस्तार से व्यक्त किया है।[1]

एक अंग्रेज कवि सर एडविन आरनोल्ड ने गीता का अनुवाद **'दिव्य संगीत'** शीर्षक से 1885 में किया। गांधी जी का गीता से प्रथम सम्पर्क[2] इन्हीं आरनोल्ड के अनुवाद से ही हुआ।

इस प्रकार भगवद्गीता का यह अप्रतिम माहात्म्य तथा गौरव है कि विश्व के तमाम विचारकों दार्शनिकों तथा विद्वानों ने गीता का अध्ययन करने के लिए संस्कृत सीखी, अपनी भाषाओं में उसके अनुवाद किए, पुस्तकें लिखीं, अपने जीवन में उसे अपनाया तथा उसका प्रचार-प्रसार भी किया। वस्तुतः बाइबिल तथा कुरआन से कहीं अधिक ख्याति इसे प्राप्त हुई और हो रही है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **"सत्यार्थ प्रकाश"** की रचना में इस गीता-वचन से प्रेरणा प्राप्त करने की बात की है- **"यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् - जो आरम्भ काल में विष के तुल्य प्रतीत होता है, परिणाम में अमृत के तुल्य है"** (गीता 18/37 -1)। इसका उल्लेख उन्होंने ग्रन्थ की भूमिका में किया है।

महाभारत में श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्ति, योगी, महापुरुष के साथ ही साथ परमात्मा के अवतार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारत में ऐसे अनेक दृष्टान्त भी हैं जिनमें श्रीकृष्ण को अपनी उत्कृष्टता के लिए अनेक परीक्षाओं तथा चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण को सगुण ब्रह्म के तद्रूप माना गया है जो इस दृश्यमान जगत का नियामक है। अर्जुन ने कृष्ण से कहा- **"हे पुरुषोत्तम! मैं आपके ईश्वरीय दिव्य स्वरूप को देखना चाहता हूँ, हे प्रभो! यदि आप समझते हैं कि आपका वह स्वरूप मुझे दिखाई पड़ सकता है तो हे योगेश्वर! आप अपना वह अनश्वर रूप मुझे दिखाएँ"**।[1] श्रीकृष्ण ने कहा **"हे गुडाकेश! जो कुछ तू देखना चाहता है, उस सबको मेरे शरीर में एकत्र देख"**।[2] अर्जुन ने देखा और बोले- **आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस विश्व के परम निधान हैं। मैं आपको देख रहा हूँ, जिसका न कोई आदि है, न मध्य और न कोई अन्त है, जिसकी शक्ति अनन्त है, जिसकी असंख्य भुजाएं हैं, सूर्य और चन्द्र जिसके नेत्र हैं। स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का यह सारा सीन और सारी दिशाएँ केवल आप अकेले से ही व्याप्त हैं।"**[1]

<u>गीता के कृष्ण :</u>

किसी जिज्ञासु साधक के मन में यह प्रश्न सहज ही आ सकता है कि हम किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व, योगी अथवा महापुरुष को ब्रह्म-परमात्मा का अवतार-भगवान कैसे मान लें? उपनिषदों में इसका समाधान है। उपनिषद् व्यक्त करते हैं कि आत्मा के स्तर पर परब्रह्म के साथ एकता की गहनतम अनुभूति होने पर वह ब्रह्म के साथ एकरूप होने की घोषणा भी कर देती है। छांदोग्य उपनिषद् में वर्णन है- **"देवकीनन्दन श्रीकृष्ण घोर आंगिरस ऋषि (अंगिरस गोत्री) की शरण में गए। ऋषि ने उन्हें तीन यजुओं की शरण लेने का उपदेश किया: "तू अविनाशी है", "तू न बदलने वाला है"** तथा **"तू प्राण का तीक्ष्ण किया हुआ (सूक्ष्म) तत्त्व है"। उन्हें (कृष्ण को) फिर भूख-प्यास (कुछ जानने की इच्छा) न रही, श्रीकृष्ण ने अपने को ब्रह्म जाना"**।[2] यहाँ पुनः शंका हो सकती है कि जब श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्म थे तो अपने को जानते क्यों नहीं थे? भगवान् अपनी लीलाओं से जिज्ञासु बनते हैं कि जिज्ञासु कैसा होना चाहिए। यह घटना वैसी ही है जैसे कि **'योग वासिष्ठ'** में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ भगवान् राम को उपदेश करते हैं। वहाँ राम-वसिष्ठ हैं यहाँ कृष्ण-आंगिरस। भगवान् अभिनय करते हैं लोक शिक्षा के लिए।

विश्व में परमात्मा द्वारा कहीं अपना संदेश-वाहक दूत भेजे जाने की और कहीं स्वयं अवतरित होने की बात कही जाती है। जब किसी व्यक्ति में गहरी अन्तर्दृष्टि और उदारता, आध्यात्मिक गुणों के साथ विकसित हो जाती है तब वह समाज में आध्यात्मिक और वैचारिक क्रान्ति ला देता है तथा अनूठा

आदर्श प्रस्तुत करता है। उस समय समाज में यह धारणा हो जाती है कि परमात्मा ने दुष्प्रवृत्तियों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए अवतार लिया है।

हिन्दू धर्म तथा अन्य धर्मों के भी ईश्वरवादी कृष्ण को ब्रह्म का मानव रूप में अवतरण, सगुण ब्रह्म तथा अवतार मानते हैं। यहाँ **"आरोहण"** तथा **"अवतरण"** का भेद भी समझना चाहिए। मुक्तात्मा का परमात्मा की दिव्यता प्राप्त करना आत्मा का **"आरोहण"** है जबकि व्यक्ति-विशेष में परमात्मा की दिव्यता का प्रकट होना **"अवतरण"** या **"अवतार"** है। यद्यपि सृष्टि की प्रत्येक चेतन सत्ता अवतरण का ही प्रतिफल है तथापि वह केवल आच्छादित प्रकटन होने के कारण इस श्रेणी में नहीं आएगा। ब्रह्म के अज्ञान से आवृत सत्ता तथा आत्म चेतन सत्ता में भेद है। इस श्रुति वाक्य द्वारा अवतरण की व्याख्या अधिक स्पष्ट हो जाती है- **"इस शरीर में ही रहने वाला जो आत्मा है, उसको जिसने ब्रह्मरूप में जान लिया, वही विश्वकर्त्ता है, वही सर्वकर्ता है, सम्पूर्ण लोक का अधिष्ठान है। वही सबको प्राप्त करने वाला है"**।[1]

महाभारत का एक प्रसंग है- अर्जुन और भगदत्त का परस्पर भीषण युद्ध हो रहा था। अर्जुन ने भगदत्त को उनके मर्मस्थलों पर बहत्तर वाणों से गहरी चोट पहुँचाकर घायल कर दिया। तब भगदत्त ने अत्यन्त पीड़ित होकर वैष्णवास्त्र प्रकट किया और अपने अंकुश को ही अभिमन्त्रित करके अर्जुन के ऊपर छोड़ दिया। भगदत्त का छोड़ा हुआ वह अस्त्र सबका विनाश करने वाला था। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ओट में करके स्वयं ही अपनी छाती पर उसकी चोट सह ली। श्रीकृष्ण की छाती पर वह अस्त्र वैजयन्ती माला के रूप में परिवर्तित हो गया। अर्जुन ने श्रीभगवान् से यह प्रश्न किया कि आपने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करके भी ऐसा क्यों किया? तब श्रीभगवान् बोले- **"मैं चार स्वरूप धारण करके सदा सम्पूर्ण लोकों की रक्षा के लिए उद्यत रहता हूँ। मेरी एक मूर्ति इस भूमण्डल पर (बदरिकाश्रम में) स्थित हो तपश्चर्या करती है। दूसरी (परमात्मा स्वरूपा) मूर्ति शुभाशुभ कर्म करने वाले जगत् को साक्षी रूप से देखती है। तीसरी मूर्ति (मैं स्वयं) मनुष्य लोक का आश्रय ले नाना प्रकार के कर्म करती है और चौथी मूर्ति वह है, जो सहस्त्र युगों तक एकार्णव के जल में शयन करती है"**।[1] महाभारत के इस श्लोक का तात्पर्य है कि ब्रह्म सदैव निष्क्रिय ही नहीं रहता है, बल्कि मनुष्य तथा अपनी सृष्टि के शुभ-कर्मों को देखते हुए उसके कल्याण के लिए सचेष्ट भी रहता है।

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गीता का उपदेश समाप्त होते ही अर्जुन ने श्रीकृष्ण को अपने संशय-रहित होकर आत्मस्वरूप प्राप्त करने की स्थिति, मोह नष्ट होने और स्मृति-प्राप्ति का वर्णन करते हुए उनके वचनों का पालन करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की। उसी समय अर्जुन के कथन के पूर्व ही श्रीभगवान् ने स्वयं गीता के प्रचार तथा दूसरों को बतलाने, अध्ययन तथा श्रवण के माहात्म्य का वर्णन किया, यथा- **"जो यह परम गुह्य मेरे भक्तों को बतलाएगा, उसकी मुझमें परम भक्ति होगी और वह निःसन्देह मुझमें ही आ मिलेगा। जो हम दोनों के इस धर्म-संवाद का अध्ययन करेगा, मैं समझूंगा कि उसने ज्ञानयज्ञ से मेरी पूजा की है। इसी प्रकार जो श्रद्धायुक्त होकर और दोषदृष्टि से**

रहित होकर इसका श्रवण करेगा, वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होगा"[1]।

श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य के विचार के प्रयास को श्री भगवान् के ही अर्जुन के प्रति इस उत्कृष्ट वाणी के साथ विराम दिया जाता है-

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।
गीता मे ज्ञानमत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम्।।

''पार्थ! गीता मेरा हृदय है। गीता मेरा उत्तम तत्त्व है। गीता मेरा अति उच्च ज्ञान है। गीता मेरा अविनाशी ज्ञान है।'' - श्रीकृष्ण